अहिंसा विकास के सूत्र

– आचार्य महाप्रज्ञ –

प्रश्न है– अहिंसा का विकास कहाँ हो सकता हैं? इसके लिए पाँच अनिवार्य शर्तें हैं। पहली शर्त है उपशांत होना। उपशम का विकास, उपशांत मुद्रा, उपशांत अवस्था जहाँ होती है वहाँ अहिंसा का विकास हो सकता है।

दूसरी शर्त हैं– सहिष्णुता। कष्ट सहन करने की क्षमता। मुनि को अगर अहिंसक बनना है तो उसे बाईस परीषहों पर विचार करना ही होगा। उसके बिना वह अहिंसा की साधना नहीं कर सकता।

तीसरी शर्त हैं– विनम्रता और चौथी शर्त है– सत्य के प्रति पूर्ण समर्पण। जिसमें सत्य के प्रति समर्पण नहीं होता, दूसरी बाहरी चीजों के प्रति समर्पण होता है, उसमें अहिंसा का विकास नहीं हो सकता। सत्य के प्रति समर्पण चाहिए। लोग व्यक्ति के प्रति, उसके वेश के प्रति, संस्थान के प्रति, जाति–बिरादरी, वर्ण, लिंग और संप्रदाय के प्रति समर्पण करते हैं, किंतु विचार और सिद्धांत के प्रति समर्पित नहीं होते। ऐसी स्थिति में अहिंसा जीवनगत नहीं हो पाती।

पांचवी शर्त है– प्रयोगधर्मिता। आदमी को प्रयोगधर्मी होना चाहिए। आज प्रयोग कहाँ है आदमी के जीवन में? कितने लोग ऐसे हैं, जो प्रयोग में विश्वास करते हैं? इस पर विचार करेंगे तो ऐसे लोगों को बहुत कम संख्या में पाएंगे। आज तक दुनिया में जितने भी महापुरुष हुए, उनके जीवन में सत्य, अहिंसा, करुणा, मैत्री की धारा बही, वे सब प्रयोगधर्मी रहे, प्रयोग में विश्वास करने वाले रहे। उन्होंने अपने जीवन को प्रयोगशाला बना डाला। प्रयोग से जो कुछ निकला, उसे ही सारतत्त्व के रूप में उन्होंने ग्रहण किया और उसी को दुनिया के समक्ष रखा। आज प्रयोग कम हो रहे हैं, व्याख्याएं ज्यादा हो रही हैं।

आचार्य तुलसी ने अणुव्रत का प्रवर्त्तन करने के बाद तरह–तरह के प्रयोग करने शुरू किये। उन्होंने मेरे सामने और साथ –साथ समाज और देश के सामने एक महत्त्वपूर्ण बात रखी कि केवल सिद्धांत से काम नहीं चलता। सिद्धांत बनाया जा सकता है, उसे सुना जा सकता है, क्योंकि वह श्रुतिप्रिय होता है। किंतु वह बहुत ज्यादा कार्यकारी नहीं होता। कुछ समय बाद उसकी विस्मृति हो जाती है। विज्ञान से भी यह सिद्ध है कि जो बात कांशियस माइंड तक सीमित रहती है, वह ज्यादा देर तक टिकती नहीं। सारा परिवर्तन का जो तंत्र है, वह तो अनकांशियस माइंड के पास है। बदलाव घटित करने की क्षमता तो अनकांशियस माइंड के पास है। जो बात भीतर प्रवेश नहीं करती, अनकांशियस तक नहीं पहुँचती, उसका व्यवहार में अनुसरण और अनुपालन नहीं होता।

इसीलिए आज बहुत जरूरी है अहिंसा के प्रयोग और प्रशिक्षण की। अहिंसा यात्रा के दौरान हमने इस संदर्भ में तरह–तरह के प्रयोग किये। अहिंसा का प्रयोग और प्रशिक्षण हो तो हमारी वाचिक चर्चा तो कम होगी, प्रयोग ज्यादा होगा। वाचिक अहिंसा में भाषण, शिक्षा, उपदेश, सिद्धांत ही होते हैं। चार–चार, पांच–पांच घंटे तक धाराप्रवाह भाषण होते हैं, तर्क–वितर्क होते हैं, किंतु निष्कर्ष के रूप में कुछ भी नहीं आता। मुख्य प्रश्न यह है कि चेतना का रूपांतरण कैसे हो? इस प्रश्न का एकमात्र उत्तर है– प्रयोग और प्रशिक्षण। दूसरा कोई विकल्प नहीं है। मैं घंटा भर आपके सामने प्रवचन करता हूँ। किंतु जानता हूँ कि सुनने के अतिरिक्त और आप कुछ भी नहीं कर रहे हैं। मैं इतना भोला नहीं हूँ कि यह स्वीकार करके चलूं कि जो कुछ कह रहा हूँ,

वह सब आपके जीवन में उतरता जा रहा है। ऐसा बिल्कुल नहीं हो रहा है। आप श्रद्धा भाव से आए हैं। प्रवचन सुनकर संतोष कर लेंगे कि हमने धर्मलाभ अर्जित किया। किंतु वास्तविकता यह है कि गहराई में उतरकर चिंतन किये बिना, प्रयोग से दिल–दिमाग को भावित किये बिना सुनना, न सुनना दोनों बराबर है।

अच्छे व्यक्ति और समाज के निर्माण के लिये सबसे ज्यादा जरूरी है चेतना का रूपांतरण। यह प्रयोग और प्रशिक्षण के बिना संभव नहीं है। आज दुनिया में हजारों–हजारों स्थानों पर प्रवचन, व्याख्यान और उपदेश हो रहे हैं। अगर ये ही कारगर उपाय होते तो अब तक दुनिया की एक बड़ी आबादी साधु विचारधारा की हो गई होती। हिंदुस्तान के ही किसी न किसी भूभाग पर या स्थान पर प्रतिदिन कितने ही साधु– संन्यासियों और कथावाचकों के उपदेश हो रहे हैं, आप किसी विश्वसनीय माध्यम के द्वारा जांच करवा लें कि वहाँ के लोगों की विचारधारा में कितना गुणात्मक परिवर्तन आया हैं? मैं समझता हूँ कि इस संदर्भ में आपको निराश होना पड़ेगा यह जानकर कि सप्ताह या एक पक्ष भर के उपदेश, कथा या कीर्तन के बाद भी वहाँ के बाजारों में, दुकानों में या कार्यालयों में अपेक्षित सुधार या परिवर्तन नहीं आया। नियमित रूप से प्रवचन का श्रोता बनकर भी आदमी अपने जीवन को उसी ढंग और ढर्रे पर चलाए जा रहा है।

बड़ी अद्‌भुत बात है कि अहिंसा की चर्चा वे लोग नहीं करते जो सुबह से शाम तक रोटी की जुगाड़ में लगे हैं। अहिंसा की चर्चा वे ज्यादा करते हैं जो स्वर्गिक वैभव भोग रहे हैं। त्याग, वैराग्य की चर्चा वे ज्यादा करते हैं जो वातानुकूलित आश्रमों के स्वामी हैं, मखमली कालीनों पर जो चलते हैं, खुरदरी और कंटीली जमीन पर पैर रखने के जो अभ्यासी नहीं है, वे संसार–सागर में डूबते आदमी की, क्षुधाग्नि में जलते आदमी की चर्चा ज्यादा करते हैं। उनके जीवन में यथार्थ के साथ कोई सामंजस्य दिखाई नहीं देता।

मेरी दृष्टि में हिंसा और अहिंसा दोनों प्रवृत्ति नहीं परिणाम हैं। प्रवृत्ति की ओर से आंख मूंदकर हम परिणाम को रोकना या मिटाना चाहते हैं। यह कभी संभव नहीं होगा। राग–द्वेष करने का परिणाम है हिंसा और राग–द्वेष को कम करने का परिणाम है अहिंसा। हम बीज पर ध्यान न देकर फल पर ध्यान दे रहे हैं। हिंसा को जहरीला फल मानकर इन्हें तोड़ने का प्रयत्न कर रहे हैं, किंतु सफलता नहीं मिल रही हैं। आज सारे फल तोड़ लें, वृक्ष हरा–भरा है तो कल से फिर फल–फूल लग जाएंगे। वृक्ष की जड़ को काट दें, फल की समस्या ही दूर हो जाएगी। हिंसा पैदा करने के कारणों को मिटा दें, निर्मूल कर दें, अहिंसा का वातावरण स्वतः पैदा हो जाएगा।

मूल प्रश्न यह है कि राग–द्वेष कम कैसे हों? हमारी प्रवृत्तियां कैसे बदलें? राग–द्वेष पैदा करने वाली परिस्थितियां कैसे बदले? इन पर विचार करना जरूरी है। संयुक्त राष्ट्रसंघ में एन. जी.ओ. की कॉन्फ्रेंस में अणुव्रत विश्वभारती के प्रतिनिधि सोहनलाल गांधी ने अपना पेपर पढ़ा ''ट्रेनिंग इन नॉन वॉयलेंस।'' अहिंसा के प्रशिक्षण पर पढ़े गए उस लेख पर लोगों की प्रतिक्रिया आई कि क्या अहिंसा का भी कोई प्रशिक्षण होता हैं? जब इस बारे में उन्हें बताया गया तो जर्मनी और दूसरे कई देशों में प्रतिनिधियों की ओर से यह कहा गया कि इस तरह के प्रशिक्षण में हम आपके साथ हैं। आप अपना यह कार्य जारी रखें।

हम प्रयोग और प्रशिक्षण पर गंभीरता से विचार करें। प्रशिक्षण के द्वारा कैसे राग–द्वेष की चेतना को उपशांत करें, कैसे अहिंसा, अनेकांत और अममत्व की चेतना को जागृत करें, इस पर गंभीरता से विचार किया जाए और प्रयत्न किया जाए। जहाँ अधिक संग्रह की बात होगी, वहाँ हिंसा को अनिवार्य रूप से पोषण मिलेगा। हमने प्रयोग और प्रशिक्षण के द्वारा देखा कि किस प्रकार मानवीय चेतना में परिवर्तन आता है। वैज्ञानिक और आध्यात्मिक कारणों पर भी विचार

करें तो पाएंगे कि बहुत बड़ा परिवर्तन आ सकता है। मेरा विचार है कि महात्मा गांधी के बाद यदि अहिंसा प्रशिक्षण की बात चलती तो गांधी शायद आज भी हमारे बीच में जीवित होते। किंतु प्रशिक्षण की बात उनके साथ ही चली गई। प्रयोग की बात पृष्ठभूमि में चली गयी, इसलिए गांधी अप्रासंगिक होते गए। अगर प्रयोग और प्रशिक्षण होते तो विचारधारा के रूप में गांधी आज भी हमारे बीच होते। उन्होंने जीवन भर सत्य, अहिंसा और शांति पर तरह–तरह के प्रयोग किये। ये प्रयोग उन्होंने स्वयं पर किये और लोगों को भी प्रशिक्षित किया। गांधी सत्याग्रही प्रयोग और प्रशिक्षण की आंच पर खरे उतरने वाले सच्चे अहिंसावादी थे।

महात्मा गांधी ने विकेन्द्रीकरण का सिद्धांत दिया। विकेन्द्रित अर्थव्यवस्था, विकेन्द्रित शासन व्यवस्था। अगर इस सिद्धांत पर ईमानदारी से पालन किया गया होता तो शायद आज हिंदुस्तान की तस्वीर कुछ और ही होती। आज ज्यादा से ज्यादा केन्द्रीकरण हो रहा है पूंजी का, शासन–सत्ता और अधिकार का। पंचायतीराज जरूर कायम हुआ, किंतु सत्ता का विकेन्द्रीकरण नहीं हो पाया। इसलिए जनता को जो लाभ मिलना चाहिए था, नहीं मिल सका।

व्यावहारिक तौर पर विचार करें तो बारह भावनाएं हैं, मैत्री, प्रमोद, करुणा और मध्यस्थ। ये चार भावनाएं अहिंसा के साथ और जुड़ जाएं, क्योंकि अहिंसा का व्यावहारिक रूप इन चार भावनाओं में परिलक्षित होता है। वास्तव में मैत्री है तो यह स्थिति नहीं हो सकती कि चालीस करोड़ लोग तो ऐश्वर्यशाली जीवन जीयें और पचास–करोड़ लोग रोजी–रोटी के लिए तरसें। वास्तविक मैत्री की स्थिति में ऐसा होना संभव नहीं है। कोई भी व्यक्ति अपने मित्र, शुभेच्छु और हितैषी को भूख से मरता हुआ नहीं देख सकता।

अहिंसा की बात तो सभी बहुत जोर– शोर से करते हैं। पर उसके लिए अपेक्षित है कि हम एक साथ बैठकर चिंतन–मनन और निर्णय कर सकें, ऐसे वातावरण का निर्माण आज बहुत जरूरी है। हमने अहिंसा समवाय की जो कल्पना की, उसका रूप कुछ ऐसा ही है– परस्पर मिलन हो, सहासन हो, एक साथ एक ही स्थान पर बैठना हो, सहचिंतन और सह निर्णय हो। जो निर्णय हो जाए, उसकी क्रियान्विति भी हो।